164 (क) महेश भाई का विस्तृत लेख एक सांस्कृतिक संघर्ष नकलची मस्तिष्क का मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क से।

(ख) किशोर चौधरी द्वारा मतदाता पेंशन का समर्थन और मेरी प्रशंसा।

(ग) किशोर चौधरी द्वारा मतदाता पेंशन का समर्थन और मेरा उत्तर।

(घ) कृष्णदेव सिंह द्वारा शराब बेचने को आंदोलन का मुद्दा बनाने का विरोध और मेरा स्पष्टीकरण।

(क) ::एक सांस्कृतिक संघर्ष ::

नकलची मस्तिष्क का मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क से

लोक चेतना के मूल केन्द्र परिवेश परिस्थितियॉ तथा इनसे बना परिदृश्य हुआ करते है। सभ्य और सुसंस्कृत कहलाने वाले लोग एक अन्य प्रकार का परिवेश निर्माण कर लेते है इनके द्धारा सूत्रबद्ध किया जाने वाला परिवेश भी अपने को स्थापित करने के लिए लोक चेतना का ऐसा मनोवैज्ञानिक धरातल खोजता है जो स्थापित किये जाने वाले सूत्र के प्रति प्रतिबद्ध हो। किसी प्रकार की प्रतिबद्धता का निहितार्थ होता है। '' गतानुगतिक लोकः न लोकः परमार्थिकः''। लोक चेतना की यही गति होती है।

स्वाधीनता के बासठ साला अतीत का व्यामोह कुंठाग्रस्त परिवेश निर्माण में भिड़ा हुआ है, लोक चेतना को नैतिक अनैतिक के बीच फरक किये बिना सुविधा भोगी जड़ता को अंगीकार कर चुका है। लोक चेतना के अवचेतन धरातल पर जो इबारत इनके द्धारा लिख दी गयी है उसी का पाठ तो आने वाली पीढ़ियॉ करेंगी। इन इबारतों की अन्तर्वस्तुओं तथा इनके अन्तर्सम्बन्धों को खंगाले बिना वह ''समाज '' जिसकी सर्वोच्चता रेखांकित की जानी है, क्या संभव ह ?

जब कोई समाज होता है तब उसके व्यवस्था संचालन की चिन्ता गंभीर सरोकार रखती है। आज तो भारत का बच्चा–बच्चा सिर्फ भीड़ की भाषा ही समझ पा रहा है। भीड़ का न तो कोई शास्त्र बन सकता है और न ही उसकी व्यवस्था के लिए चिन्तित ही हुआ जा सकता है।

आज की धड़ी में भारतीय लोकतंत्र में शासक दलों का मुख्य हथियार भीड़ ही तो रह गयी है। भीड़ की लोक चेतना को अधिक से अधिक मात्रा में भुनाना ही एक मात्र स्थापित धंधा बन गया है। नामी गिरामी कोई अपराधी यदि जमानत पर जेल से बाहर आता है तब उसका स्वागत भी वही लोक चेतना करती है जो उसके तथा उसके गुर्गो के द्धारा सतायी भी जाती है। इस प्रकार देखेंगे तो भीड़ अपनी लोक चेतना की सर्वोच्चता हर क्षण, हर गली, हर चौराहे, हर मोड़ पर प्रकट कर रही है। हम भी भीड़ की विभीषिका से अछुते नहीं है।

सुधार वादियों के सुधार की कोशिश का यदि अध्ययन किया जाये तो यह जाहिर हो जायेगा कि भीड़ जुटाना ही इनका सुधार है। जितनी बड़ी भीड़ उतना ही सफल उनका सुधार।

आज की जरूरत है अतीत के उन व्यामोहों को समग्रता में समझने की। लोक चेतना की कुंठाग्रस्त कड़वाहट को महसूस करने की। क्योंकि भारत में स्थापित लोकतंत्र की लोक चेतना बंधक बना दी गयी है। नागरिक की अपनी नागरिकता का मतदाता की अपनी संप्रभुता के अवबोध का विकास की कमाउ घुट्टी से ब्रेनवाश कर दिया गया है। हर कोई आत्मकेंद्रित व्यवस्था का भुक्कड़ बना दिया गया है। नागरिकता का एहसास ही भारतीयों में मृत हो गया है।

विचारणीय प्रश्न यह है कि बिना नागरिक अवबोध (civicsense) के किसी प्रकार का sociopolitical आंदोलन खड़ा हो सकता है क्या? गांधी को मैने देखा नही । गांधी के लोगो को सुना है। उनकी लिखी किताबों को कुछ ही पढ़ा है। स्व0 पंडित श्रीराम शर्मा का संस्मरण पढ़ा है। पंडित जी सेवाग्राम आश्रम गांधीजी से मिलने कुछ सीखने गये थे। उनका संस्मरण बताता है कि गांधी जी (civicsense) के प्रति कितने सजग थे। हम sociopolitical मूवमेंट चलाने की तैयारी में जुटने जा रहे हैं। हमारे लिए लाजिमी हो जाता है यह तय करना कि प्रचलित भीड़ तंत्र से तो हम भी जुड़ने कली दिशा नहीं पकड़ने वाले है?

हमारे नागरिक जीवन में लोक चेतना का स्थान निराला है। यदि गौर से इस ओर ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट दिखेगा की लोक चेतना की अपनी कोई गति नही होती। जो इसमें गति भरता है भीड़ के रूप में जुटकर वह उसी की चेरी बन जाती ह । प्रायोजित भीड़ के परिणाम से लोक चेतना का कुछ भी लेना देना नही रहता। इसके संबंध में तात्कालिक घटित तीन घटनाओं का उल्लेख, लोक चेतना का आवतारिक स्वरूप समझने के लिए करना जरूरी लगता है।

20 अगस्त 2008 का दिन कम्युनिष्टियों द्वारा आयोजित भारत बंद का दिन स्थान गोपालगंज (बिहार) का जिला मुख्यालय। महंगाई के खिलाफ धरना प्रदर्शन और चक्का जाम का कार्यक्रम प्रायोजित किया गया था। इस धरना का प्रदर्शन देख मैं दंग रह गया। मरियल सी औरतों की हाथों में बांस के फट्टे थें। जो अपनी प्रदर्शनकारी भीड़ को नियंत्रित कर रही थी। भारत में लोक चेतना में गति भरने का गोरख धन्धा ऐसे ही कर्मकाण्डों से पोषित हो रहा है। इसमें प्रायोजक या प्रायोजित कौन किसका कितना शोषण कर रहा है समझने की बात है।

एक दूसरा प्रदर्शन भी यही चल रहा था। यह धरना वितरण प्रणाली के डीलरों का था। उनको बिहार में उपभोक्ताओं का राशन किरासन का ऐसा कूपन दिया गया है जिस पर वस्तु की दर और मात्रा भी अंकित कर दिया गया है। इसी के विरोध में जन वितरण के डीलरों का धरना प्रदर्शन था। इन डीलरों की मॉग थी इनको सरकारी सेवक 21 हजार रूपये के वेतन पर स्वीकार किया जाना चाहिए।

एक तीसरा आयोजन आन्ध्रप्रदेश की राजधानी हैदराबाद में शबनम हासमी द्वारा किया गया। यह आयोजन मुसलमानों के मानवाधिकारों के लिए किया गया था। यह आयोजन दुनिया के मानवाधिकार के आलम बरदारों का ध्यान खीचनें के लिए किया गया था कि भारत में मुसलमानों का मानवाधिकार ही सुरक्षित नहीं है।

भारत की आम आबादी की लोक चेतना का एक और दृश्य। अफवाहों से प्रवाह पत्ति होकर गोपालगंज के गांवो की महिलाओं में एक ऐसी लोक चेतना भीड़ के रूप में उमड़ पड़ी जिसे समझना कितना कठिन था कहा नहीं जा सकता ये महिलायें अपने –अपने धरों से झुण्ड की झुण्ड निकलकर पांच गांवों में पांच ही धरों से भीख मांगकर गंगाजी के नाम पर, अपने पास की नदियों में, कच्चे आटे का पांच पीठा चढ़ाती।

इस प्रकार लोक चेतना भय, लालच, और देखा–देखी से संचालित होती है । एक ऐसे विश्वास से जो कभी सच साबित नहीं किया जा सकता। वैसे भी विश्वास का अपना ही सच यह होता है वह कभी सच सिद्ध नही होता। लोक चेतना विश्वासों की अन्धी गली का रास्ता ही सुनती है। क्योंकि विश्वास उसे मनोवैज्ञानिक सुरक्षित देते है। इसलिए विश्वासों से एक ऐसी सुरक्षित का स्वाद लोक चेतना के मनो धरातल का लग जाता है। जिसे भोगने के लिए अभिरूचि सक्रिय हो उठती है और लोक चेतना बतौर निवेश स्वयं को झोक देती है।

आंध्र प्रदेश की खूनी परिस्थितियों के गर्भ से भूदान का जनान्दोलन तथा गुजरात छात्रान्दोलन के गर्भ से निकला बिहार आन्दोलन, जे.पी. आन्दोलन के गर्भ से निकला था। क्या समय था इन दोनो आन्दोलनों का। शायद ही कोई समझ पा रहा होगा कि यह क्या हो रहा है। आन्दोलनकारियों के लिए रोटियां और सूखी सब्जी या अचार को साथ लपेटकर बनायी गयी पुड़ियों का पहाड़ सा लगता गया। लोग उम्रदराज नौजवान

प्रबल प्रवाह पैदा करने में भिड़ गये थे। मुक्ति की अजीब भूख सबको अपनी आहुति देने के लिए जग गयी थी। इन दोनों जनान्दोलनों का उल्लेख इसलिए किया जा रहा है क्योंकि आज के परिवेश और परिस्थितियों ने civicsense को ही लील लिया है।

लोक स्वराज्य अभियान को लोक चेतना निर्माण के प्रति अति संवेदनशील तथा सजग रहना चाहिए। क्योंकि यह तथ्य सबके सामने है कि आज के बाजारू परिवेश के मुख्य दो खिलाडी मीडिया और नागरिक उभर कर लोक चेतना पर अपनी गहरी पैठ जमा चुके हैं। इनके मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रहार करने का कोई हथियार अपने पास है क्या?

ज्ञानतत्व के बुलेटिन 159 में आचार्य पंकज का सारगर्भित पत्र पढा। आचार्यजी ने इसमें समाजशास्त्र ,धर्मशास्त्र राजनीतिशास्त्र तथा अर्थशास्त्र के अर्न्तसंबंधों को विवेचित किया है। इस विवेचना में समाज की सर्वोच्चता प्रतिपादित करने का बड़ी बारीकी से विचार किया गया है। क्योंकि व्यवस्था की कोई शुरूआत किसी न किसी सामाजिक इकाई को सामने रखकर की जाती है और उस स्थापित व्यवस्था का अन्त भी उसी इकाई को सामने रखकर किया जाता है।

समाज का अपना नागरिक अवबोध civicsense होता है। यही नागरिक अवबोध नागरिक समाज के रूप में अपनी व्यवस्था की चिन्ता और चिन्तन करता है और वह समाजशास्त्र बन जाता है। नागरिक समाज नागरिक अवबोध की समझ के अनुरूप होता है किन्तु आज भारत में न तो कहीं नागरिक अवबोध की समझ देखने को मिलती है और नही कहीं नागरिक समाज, जो अपनी व्यवस्था संचालन की पीड़ा को महसूस करता हो। इण्डिया ऐक्ट की खोल में दिया भारतीय संविधान संपूर्ण भारतीयों को अवबोधहीन बनाने में बासठ सालों से लवलीन है। ऐसे परिवेश में समाज वजूद में आ नहीं सकता तो वही अपनी सर्वोच्चता की समझ कहा से पायेगा? पहले प्रहार भारत के संविधान पर फिर समाज की तलाश की जरूरत है।

'' स्वाधीनता चाहिए'' ऐसी एक भूख एक छटपटाहट महसूस की गयी थी, चाहे वे अभिव्यक्ति कहलाने वाले नव जवान हो या भूखमर किसान मजदूर नवजवान या उम्रदराज औरत मर्द। स्वाधीनता के अलावा कुछ नही चाहिए था उनको। हांलाकि यह कयास लगाना बेमानी होगा कि स्वाधीनता का अर्थ, स्वाधीनता की व्यवस्था, समाज रचना के अर्थ संयोजना या स्वाधीनता की व्यवस्था, समाज रचना अर्थ संयोजना या स्वाधीनता का धर्मशास्त्र कैसा होगा? का आकलन या स्पष्ट खाका उनकी समझ में आ गया आने से वे सारे सवाल सारी आशंकायें निर्मूल होने की संभावना तो बढ़ी ही थी। स्वाधीनता के खिलाफ बोलने वाला स्वयं अछुत बन जाता। आचार्य जे.पी.बी. कृपलानी की माने तो बात समझ में आ जायेगी। '' स्वाधीनता प्राप्ति के लिए नीम की पत्तियॉ खाने की तो कौन कहें गांधीजी जो कहेंगे हम करने के लिए तैयार है''। और यह सत्य स्वमेव सिद्ध कर दिखाया था आचार्य विनोबा और साधु सुरेन्द्रजी ने। ये दोनो आध्यात्मिक शोधक थे। लेकिन गांधी

के साबरमति आश्रम में इन लोगों ने भी अन्य आश्रमवासियों के साथ मिलकर संडास से लेकर चमड़ा शोधन तक की कला सीखी थी और लोक शिक्षण के लिए इनका उपयोग भी किया था।

आज से 78 वर्ष पहले साबरमति से एक तुफान निकला था जिसकी दुदुंभी गांधी ने मात्र पचहत्तर साथियों को लेकर पीटी थी। ''सारा समुद्र हमारा है, इसलिए सारा नमक हमारा है'' नमक पर हम अंग्रेज सरकार को कोई टैक्स नहीं देंगें और भारत के घर–घर में नमक बनेगा''। और हुआ भी। जैसा कि अपने पुरूखों से सुना है धर की कड़ाही और अपने खेतों की रेह गॉव–गॉव के खलिहानों में चूल्हें जले और नमक बनने लगा। अंग्रेजो द्धारा थोपा गया ''नमक कानून'' इस प्रकार तोडा गया और हजारों लाखों वैसे लोग जेल गये जिनको नमक के कंट्रोल की पीड़ा सहनी पड़ी थी।

बाइस सितम्बर दो हजार आठ, स्थान सेवाग्राम आश्रम अर्थात अठहत्तर साल सात महिने बाद एक और तुफान प्रेशर ग्रुप जन्म ले चुका है। इस प्रेशर ग्रुप की जानकारी सुश्री मृणाल पाण्डेय संपादक दैनिक हिन्दुस्तान हिन्दी की तो नहीं है। लेकिन उनकी शुभेच्छा को यहा संदर्भित करना उपयुक्त लगता है।

सुश्री मृणाल पाण्डेय ने अपनी उत्कट, संभावना को भारत की स्वाधीनता की साठवी सालगिरह पर व्यक्त करते हुए अपने संपादकीय आलेख में लिखा '' बदलाव तभी संभव है जब इनमें से किसी को यकायक अपने भीतर गहरी कचोट और छटपाहट (बहुत संभव है नितांत निजी कारणें से)महसूस हो कि जे.पी. की तरह के उसके अप्रत्याशित पड़ाव पर भी व्यवस्था और यथा स्थिति बगावत कर दें। ऐसी ईमानदार बगावत अपना कारवां स्वयं बना लेगी। लोकतंत्र की चौकस पक्षधर निरीक्षक और विवेचक एक साथ बने बिना हमारी निष्कृति नहीं, बगावत हम करें या न करें? ''

सुश्री मृणाल पाण्डेय के शुभ उदगार के परिप्रेक्ष्य में संत बिनोबा तथा श्री अरविन्द और श्री मां के उन उदगारों को यहां प्रस्तुत करना जरूरी लग रहा है। जिसे भाई श्री सर्वनारायण जी ने श्री अरूण भाई के नाम लिखा था। जिसकी एक प्रति मेरे पास भी भेजी गयी थी।

पत्र मे विनाबा को उध्द्रत करते हुए लिखा गया है ''बहुत सारे लोगों के मन क्षुद्र बातों में उलझे हुए रहते है'' वे इस विचार को कब ग्रहण करेंगे ऐसे प्रश्न मत उठावें । यह विचार खुद ही उनके सिर में दाखिल होगा अतिमानस सूर्य है। आम के वृक्ष पर अनेक फल लगे है। सूर्य सबको प्रकाश देता है। किन्तु उस प्रकाश के प्रभाव से एक दो आम पक्व होकर अपनी अनूभूति से सूचित करते हैं कि पूरे आम उतार लेना चाहिए। उसी प्रकार लोक समाज में उनकी तैयारी हुई रहती है। उनके अन्तर्विभूति पर अतिमानस की प्रकाश किरण केंद्रित होती है, और यही चीज और वस्तु स्थिति एक नयी शक्यता की श्रद्धा

उत्पन्न करती है। और सचमुच एक श्रद्धा रखने के अलावा अपने पास कोई विकल्प नहीं दिख रहा।

इसी पत्र में आगे लिखा गया है ''सबेरा होने से पहले ज्यादा अंधेरा होता है। बाबा और श्री अरविन्द जी की एक वाक्यता – जैसी दिखती है मेरी समझ से सिर्फ शैली और शब्दों के फर्क है। श्री अरविन्द जी अति मानस के अवतरण के आधार पर से कहते दिखते है तो बाबा विज्ञान युग का हवाला देते है। राजनीति और मजहब इन्हें माना जाना ही है। लेकिन जाने के पहले ये बहुत तकलीफ देने वाले है। पुराने मानस शास्त्र, नीति शास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र कोई भी इस विज्ञान युग में काम के नही रहें। अगर ईश्वर को इस भगत को लय न करना हो जगत को कायम रखना हो तो समाज के अतिमानस का दर्शन होने वाला है। श्री अरविन्द और माताजी के अनुसार अतिमानस का पृथ्वी पर अवतरण हो चुका है। और वह बहुत बेग से काम कर रहा है। एक शिष्य द्धारा यह पूछे जाने पर कि अतिमानस कार्य कर रहा है यह कैसे समझा जाये तो श्री अरविन्द का उत्तर था कि यह लोगों को बतलाना संभव नहीं है। लेकिन कुछ बाहरी लक्षणों पर से अन्दाज किया जा सकता हैं। (i) सारी पृथ्वी पर भूकम्प के रूप में विभीषिकायें अधिक आयेंगी। तरंगे Matter को भी प्रभावित रही है।(ii) मानव समाज में अधिकाधिक तनाव पागलपन, उन्माद प्रकट होंगे । (iii) Confusion पहले बढ़ेगा सारे संतुलन गड़बड़ायेगे। (iv) दूसरी ओर मानव जाति में व्यापक एकता की भावना बढ़ेगी और अधिकाधिक अभिमुख आत्मा Enlightened Soul प्रकट होंगी।

उपरोक्त दो प्रकार के आकलनों को प्रस्तुत करने का मात्र इतना ही आशय समझना चाहिए कि अतीत के व्यामोह मुक्त चिन्तन और आचरण में कितना वस्तुगत अर्न्तसंबंध हम रोप सकते है ? जबकि सामने ''जो है '' उसकी संपूर्णता में अर्न्तनिंहित वस्तुगत अर्न्तसंबंधों की चौकस ईमानदार पड़ताल क्या नहीं जानी चाहिए?सामने ''जो है '' जो दीखता है उसमें समाज कहीं नही दीखता है। दीखने वाले को सिर्फ और सिर्फ कह सकते है। उत्तर ''आदमी'' के जंगल तो sociopolities को क्या जंगलों को समझाया जा सकता है। यह तथ्य अब छुपा हुआ नहीं है कि स्वयंसेवी संस्थाऐं, सरकारे तथा अन्य धर्म परिवर्तन कराने वाले आदिवासियों के बीच का सेवा, शिक्षण का कार्यक्रम चलाकर उनको राष्ट्र की मुख्य धारा में शामिल कराने की कोशिशें करते है लेकिन लालच भयवश ही वे किसी की बातें सुनते है। राष्ट्र की मुख्य धारा क्या है? इससे उनका कुछ भी लेना देना नहीं होता।

आज जिस sociopolitical परिदृश्य को प्रकट करने का चिन्तन और व्यवस्था की बातें बजरंग मुनि जी द्धारा उठाई जा रही है कितने ऐसे हैं जो अपना सुरक्षित परिवेश जंगल के आदिवासियों सरीख रचे गए परिवेश से बाहर निकलने को तैयार हैं। इसलिए तो मृणाल पाण्डेय को यह कहना पड़ा है स्वाधीनता की साठवीं सालगिरह पर ''लोकतंत्र औसत भारतीय की जिन्दगी में अभी भी काफी हद तक अपरिभाषित और

अजनबी बना हुआ है''। आखिर यह टिप्पणी किनके लिये है? जंगल के पेड़ या जंगली झाड़ियां कौन? आखिर कौन?

चूंकि लोक स्वराज्य अभियान की ओर से यह तय किया जाने वाला है कि लोकतंत्र को औसत भारतीय की जिंदगी परिभाषित करने की चुनौती स्वीकार करनी होगी । इसके लिए जनान्दोलन चलाने का समय आ गया है। चुनौती देने का मुद्दा क्या होने से पहले नमक सत्याग्रह के बीच घटी एक घटना का उल्लेख किया जा रहा है जो अति संवेदनशील आस्था और श्रद्धा से सरावोर लोक चेतना को अभिव्यक्त करने वाली घटना है।

घटना का विवरण इस प्रकार है, स्व0 साधु सुरेन्द्र जी साबरमति आश्रम के प्रोडक्ट थें। आश्रम में गांधी जी सहित सभी आश्रम वासी सुरेंद्र जी को साधु सुरेन्द्र कहा करते थें। चिन्तन के स्तर पर वे निवृति परक रहा करते थे। लेकिन आश्रम व्यवस्था की प्रवृतियों से निवृत नहीं थे। आश्रम में लोक शिक्षण प्राप्त करने के बाद अन्य आश्रमवासियों की तरह ही साधु सुरेंद्र जी को भी एक क्षेत्र विशेष का कार्यभार दिया गया। संयोग से वह क्षेत्र दांडी मार्च के रास्ते में पड़ा था दांडी मार्च पडावों पर विश्राम के लिये कुटियायें बनायी गयी थीं। गांधीजी के साथ सह यात्री आगे बढ जाते थे। गांधीजी की कुटिया के साथ सारी कुटियाएं खाली हो जाती। गांधीजी के लिए बनायी गयी कुटियाएं के खाली पड़ जाने के बाद आसपास की ग्रामीण गुजराती महिलाए सने हुए कच्चे आटे के दीए और घी से सनी हुई रूई की बतियॉ लेकर आस्था और श्रद्धा से सराबोर होकर पहुच जाती। गांधी की कुटिया में दीए जलाकर अपनी आस्था और श्रद्धा गांधी को अर्पित कर चली जाती।

चूंकि सुरेद्र जी का वह क्षेत्र था और उनके क्षेत्र में ऐसी घटना घटने लगी थी जिस पर उनकी संवेदनशील दृष्टि सजग होकर निरीक्षण और परीक्षण कर रही थी। उनकी संपूर्ण समझ की अनुक्रिया प्रकट हुई। ग्रामीण श्रद्धालू महिलाओं के लिए जलाकर चले जाने के बाद साधु सुरेंद्र जी कुटिया में घुसते और कच्चे आटे के दीयों को जमा करते। बत्तियों से घी निचोड़ते और आटे में अच्छी तरह मिलाकर रोटियां सेंक कर खा लिया करते।

गॉव वाले सुरेन्द्र जी इस कृत्य से अप्रसन्न तो हुए लेकिन उनकी सेवक वृत्ति से गांव वाले पूर्व से संतुष्ट थे। अतः सीधे–सीधे उनसे कोई जवाब तलब करने का साहस वे नहीं कर सके। गांव वालों ने इसकी शिकायत सरदार वल्लभ भाई पटेल से कर दी। सरदार पटेल सीधे सीधे सुरेंद्र जी से कुछ न पूछकर इस प्रश्न को गांधीजी के पास पहुंचा दिये। सुरेंद्र जी बुलाए गए। गांधीजी ने सरदार पटेल के सामने ही कहना शुरू किया,'' मैं सुरेंद्र को अच्छी तरह से जानता हूॅ। यह कच्चा घी नहीं खाता होगा। घी को आटे में मिलाकर रोटियॉ बनाता और खाता होगा। क्यों सुरेंद्र है न यही बात''। और गांधी जी सरदार की ओर देखकर मुस्कुराने लगे। सरदार अवाक रह गये।

हालांकि नमक सत्याग्रह के प्रभाव क्षेत्रों और इसकी गहरी व्यापकता के अनेक दृष्टव्य चर्चित रहे। गांव गांव घर–घर नमक, स्थानीय उपलब्ध रहे की मिट्टी से बनाया गया था। इससे भारतीय लोक चेतना को स्वाधीनता के आश्वासन का एक गहरा एहसास हुआ था। लेकिन दूसरी ओर उसी नमक आन्दोलन के गर्भ से एक ऐसा योद्धा भी निकला जिसने यह महसूस किया कि एक लोक चेतना नमक कानून तोड़ने में जुटी है तो श्रद्धालू लोक चेतना गांधी को देवत्व की ओर ले जाने के लिये आतुर है। गांधी तो अदना हाड–मांस का हमारे जैसा ही आदमी है। आस्था और श्रद्धा को आज की कारगुजारियां गांधी का एक सम्प्रदाय निर्माण करने वाली है। अतः ऐसी लोक चेतना जो अन्ध चेतना को प्रतिरोपित करने वाली है इस पर साहस पूर्वक निर्भय प्रहार तत्सामयिक है और साधु सुरेंद्रजी ने वह कर दिखाया था।

इस घटना के पच्हत्तर सालों बाद कांग्रेस और तुषार गांधी की मिली जुली दांडी मार्च की पच्हत्तरवीं सालगिरह पर निकाली गयी। लगे हाथ सर्व सेवा संध की ओर से भी एक नकली दांडी मार्च की जयंती का आयोजन किया गया। आश्चर्यजनक और अफसोसनाक वाकया तो वह घटना है कि गांधी के उत्त्राधिकार की लड़ाई में सर्व सेवा संध को आगे आना पड़ा। अब जबकि गांधी कथा के नवाहन तथा एकादश परायण को प्रतिष्ठित करने के कार्य का शुभारंभ राजस्थान से किया भी गया है। इससे यहॉ सिद्ध होता है कि हम कितने भयभीत है।

संवाद और संवेदनशीलता हमारी मुख्य त्रासदी क्या नहीं? किन्हीं प्रकार के कर्मकाण्डों से संवाद या संवेदनशीलता की रचनात्मक अनुक्रिया की संभावना प्रकट हो सकती है? Preocupied, Preconditioned mind अपने ही द्धारा रचित कर्मकाण्डों और कथा परायणों को आधार बनाकर अपनी संवेदनशीलता और संवेदनशीलता की रचनात्मकता नही मान लेता? कि उसके द्धारा लोक चेतना संवादित हो रही है। नमक सत्याग्रह का कर्मकाण्डी नकल जो इसकी पच्हत्तरवी साल गिरह पर सर्व सेवा संध द्धारा की गयी थी। गांधी के निजी सचिव रहे महादेव भाई के पुत्र नारायण देसाई द्वारा गांधी कथा का एकादश परायण अनुष्ठान पूर्वक वाचन किस प्रकार की लोक चेतना को अभिभूत करेगा? कैसे रचनात्मक अवबोध प्रकट करेगा। किसी ''प्रदर्शन '' का दर्शन बघारना होती है राजनीति। साधु सुरेन्द्र जी गांधी की कुटिर के दीये बुझाकर आटा और घी को खा जाने तथा अपने प्रिय ग्रामिणों की आस्था श्रद्धा पर प्रहार करके क्या यह प्रमाणित नही करते हैं कि वह व्यक्ति जो सत्य अपनी सम्पूर्णता मे सजग रहता है ''जा है'' को उसके निहितार्थो के साथ त्तक्षण समझता है परिणाम की चिन्ता न करते हुए त्तकाल प्रभाव से उस पर अनुक्रियात्मक अमल करता है कि ऐसी ही होती है संवाद संवेदनशीलता। जहां अन्तर्विरोधी के लिये कोई स्थान नही होता।अन्तर्विरोध यानी identity अपनी अपनी प्रतिबद्ध पहचानें अन्तर्विरोधों को जब संवाद के द्धारा परस्पर की चर्चा से प्रतिबद्धता का निरसन होता है अस्मिता की अनुक्रिया स्वतः विलोपित हो जाती है। बच जाता है मात्र संवाद यानी वक्ता तथा श्रोता समान मनोधरातल पर समान समझ के साथ एक रूपया कायम करते हैं।

कन्हर के किनारे रामानुजगंज के जंगलों और पहाड़ियों में जो नक्सली आतंक का प्रभाव क्षेत्र भी है, मुनिवर बजरंग मुनि जी अपने अनेकानेक प्रयोगों के द्धारा तप करते रहें । सामाजिक अर्न्तवस्तुओं और अर्न्तसंबंधेां में कौन सी वह कड़ी है जो सिर्फ विखंडन को महिमा मंडित कर रही है? और यह तथ्य उजागर करने में सॅल भी रहे '' लोकतंत्र में स्वनिर्णय का अधिकार'' टोला टपरा गांव कस्बा नगर महानगर को वही संवैधानिक अधिकार मिलना चाहिये जैसा अधिकार प्रदेश और केंद्र को प्राप्त है। अन्तरमात्र इतना ही पडेगा कि केंद्रीय सत्ता राष्ट्रीय व्यवस्था करें, प्रान्तीय सत्ता अपने प्रान्तीय क्षेत्र का तथा गांव के टोला टपरा नगर महानगर अपनी अपनी इकाईगत क्षेत्रों की व्यवस्था'' स्व निर्णय'' से करें। इनकी व्यवस्था में केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सत्ताओं का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष किसी प्रकार का हस्तक्षेप न हो। और न ही ये प्राथमिक इकाईयां किसी प्रकार का अन्तर्विरोध किसी के साथ पैदा करें। यह एक संवेदनशील एहसास था ठीक वैसे ही जैसा की गांधी को गोरे काले के अर्न्तसंबंधों से एहसास हुआ था। संवेदनशीलता संवाद के लिये अपना कदम बढ़ाती है।

इस प्रसन्नता के साथ इस आलेख को सम्पन्न किया जा रहा है कि शायद सुश्री पाण्डेय ने इतिहास में स्वाधीनता की साठवीं सालगिरह पर पुनः जिस पन्ने को जोड़ने की शुभकामना की थी वह समय आ गया है। श्री ठाकुर दास जी बंग और श्री बजरंग मुनि जी अपनी अपनी उम्र के ठीक उसकी मूकाम पर आज खड़े है यानी ''उम्र के अप्रत्याशित मुकाम पर''। जहां से वर्तमान व्यवस्था तथा यथास्थिति के खिलाफ आगामी 20,21और 22 सितम्बर को शंखनाद किया गया है। प्राप्त स्वाधीनता का'' अपरिभाषित लोकतंत्र'' तथा इसके द्धारा थोपी गई परिस्थिति की गुलामी से मुक्ति का चुनौती स्वीकार करने तथा महा प्रयाण पर निकलने का समय आ गया है। जो ''औसत भारतीयो'' को उनकी जिंदगी से जोड़ने वाला लोकतंत्र होगा और लोकतंत्र के बजाय गणराज्य को परिभाषित करेगा।

आंदोलन के मुद्दे पर शराब को प्रतीक बनाना ठीक नहीं होता ,इस संबंध में गोरक्षा के लिये किये जा रहे देवनार सत्याग्रह में शामिल रहे सर्वनारायण भाई ने अरूण जी को लिखे अपने चिन्तन के क्रम में यह पत्र लिखा।

''बिनोबा जो बच रहा था, उसे मिटाने का काम बाबा को पूरा करना था और यह काम उन्होंने गोहत्याबन्दी कार्यक्रम और देवनार सत्याग्रह के जरिए पूरा किया दिखता है। यह सारा प्रकरण ऐसा है कि बिनावा को मानो ब्लैक होल ने गडप कर डाला हो। उनके अपने जनों को भी उनके जीवन पर लिखना बोलना होता तो गोहत्याबंदी और देवनार सत्याग्रह वाले भाग पर पहुंचकर इससे जैसे तैसे पीछा छुड़ा कर एक दम ब्रम्हा निर्वाण पर आ जाना पड़ता है। बाबा ने इस तरह स्वयं को big zero बना लिया ऐसा हम पाते है।

''यह सच है कि देवनार सत्याग्रह के पच्चीस साल हो चले, और यह काफी विदूप भी हो गया दिखता है। जड़ता तो अप्रतिम ही कही जावेगी बाहरी लक्षणेां से ऐसा कोई आधार नहीं दिखता जिससे की इसके चलते रहने का सर्पोट किया जाए, चलाते रहने का औचित्य सिद्ध किया जा सके''।

इन अनुभवों के आधार पर यह स्पष्ट है शराब को आन्दोलन का विषय न बनाकर ठीक ही किया गया है। आगे और विचार मंथन जारी रहेगा ही।

महेश भाई, विजयीपुर गोपालगंज बिहार

(ग) श्री किशोर चौधरी, गजासराय , इस्लामपुर , नालन्दा, बिहार

प्रश्न — देश भर के विभिन्न राजनीतिक दलों के करीब डेढ़ सौ सांसदों ने मतदाताओं को राष्ट्रीय आय में आर्थिक भागीदारी को आवश्यक और न्याय संगत मानते हुए मतदाता पेंशन की मांग की है। यह राशि कुछ लोग सत्रह सौ रूपया प्रति मतदाता की मांग कर रहे हैं तो कुछ दो हजार या पांच हजार। कुछ लोग सिर्फ मतदाता तक सीमित रखना चाहते है तो कुछ जन्म से ही। कुछ लोग सिर्फ मतदाता तक सीमित रखना चाहते है तो कुछ जन्म से ही। कुछ लोग गरीबी रेखा से नीचे वालों को देना चाहते हैं तो कुछ सबको आपने भी पिछले अंको में इसका समर्थन किया है। आप स्पष्ट करें कि आप खुलकर इसे अपना मुद्दा क्यों नही बना रहे। क्या आपकी समझ में एकमात्र यह मांग राजनैतिक परिवर्तन पर प्रभाव डालने के लिए सक्षम नहीं है?

उत्तर — यह एक गंभीर प्रश्न है। राज्य और समाज में बीच अस्तित्व का टकराव चल रहा है। प्राचीन समय में राज्य समाज के सुरक्षा और न्याय की व्यवस्था तक सीमित था। प्राचीन समय में राज्य यदा कदा सर्व शक्तिमान बनने की इच्छा भी करता था और प्रयत्न भी किन्तु प्रायः ऐसा नहीं हो पाता था क्योंकि ऐसी स्थिति में राज्य को सामाजिक विद्रोह का डर रहता था। लोकतंत्र में राज्य की भूमिका बदली। उस समय जन्म के आधार पर राजा था, व्यक्ति राजा था हटाने की कोई वैधानिक प्रक्रिया नहीं थी। लोकतंत्र में कर्म के आधार पर राजनीतिज्ञों की एक नई जाति बनी, इस जाति में से ही एक समूह किसी वैधानिक प्रक्रिया के अंतर्गत राज्य की व्यवस्था करने लगा और उसी जाति का दूसरा समूह द्धारा उलटने पलटने की भी व्यवस्था बनी। प्राचीन समय में इन बुराईयों के साथ अच्छाइयां भी थीं कि समाज का पृथक अस्तित्व थी। जिसके आन्तरिक मामलों में राजा का हस्तक्षेप नही ंके बराबर था, तथा आर्थिक या धार्मिक मामलों में भी राजा की भूमिका नगण्य ही होती थी। किन्तु नई लोकतांत्रिक व्यवस्था में समाज लगभग गुलाम हो गया।

राजनीतिज्ञो की एक पृथक जाति बन गई जिसने स्वयं को समाज का स्वाभाविक प्रतिनिधि घोषित कर दिया। इन सबने मिलकर एक संविधान बना लिया और उस सविधान के आधार पर समाज की पृथक पहचान ही समाप्त कर दी। इन लोगो ने धीरे–धीरे समाज के आर्थिक धार्मिक अधिकारों को भी अपने पास समेट लिया। यहां तक कि परिवार के पारिवारिक मामले भी इनकी पहुॅच से बाहर नहीं रहे। ये अब भी प्रयत्नशील हैं कि समाज के किसी भी प्रकार के निर्णय इनकी पहुंच से बाहर न हो। अपने उद्धेश्य की पूर्ति के लिए ये समाज की अधिक से अधिक सुविधाओं को प्रदान करते रहते हैं किन्तु स्वतंत्रता में कटौती करते रहते है।

मेरे विचार में समाज के समक्ष अस्तित्व का संकट है। विचारणीय प्रश्न यह है कि हम राज्य से अधिकारों की मांग कर अधिक जोर दें या सुविधाओं का मांग पर। जो लोग अधिकारों के संघर्ष के स्थान पर सुविधाओं के लिए संघर्ष में सक्रिय हैं वे मेरे विचार में गुलाम मानसिकता में जीने को अपनी नियति समझ चुके हैं। ऐसे पस्त हिम्मत लोगों की मैं चर्चा नही करना चाहता। किन्तु राजनितिज्ञ बिरादरी का कोई व्यक्ति ऐसी पहल करता है तो मुझे उसके कथन में षडयंत्र की गंध आती है। मतदाता पेंशन की मांग को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्कता है क्यों कि यह मांग किसी भी रूप में स्वतंत्रता की मांग की सहायक नहीं है। यह स्वतंत्र मांग है जिसका समाज के अधिकारों की मांग से कोई संबंध न होकर सिर्फ सुविधाओं की मांग तक ही सीमित है। इस मांग के साथ विशेष खतरा यह है कि सत्ता के पुजारी वोट के भिखारियों को इस मांग के माध्यम से वोट बैंक बनना अधिक आसान दिख रहा है। आपके प्रश्न से कुछ ऐसी ही गंध आती है।

मेरी जानकारी के अनुसार वर्तमान समय में ऐसी अकेली मांग उठाने वाले या तो राजनीतिज्ञ हैं या किसी तरह उस जाति बिरादरी में शामिल होने के लिए छटपटाने वाले कुछ बाहर खड़े लोग। कोई सामान्य नागरिक तो इसे सामाजिक सशक्तिकरण का माध्यम नहीं मान रहा। आम नागरिक इस मांग से इसलिए प्रभावित है कि इस मांग से कुछ आर्थिक सुविधाएं तो बढ़नी निश्चित हैं ही। इसलिए यदि मुलामी में ही जीना निश्चित है तो जो मिल जाये वही ठीक है। न तो सत्ता संधर्ष में शामिल हूॅ न ही विवश हो चुका हूॅ। इसलिए ऐसी मांग का मैं समर्थन नहीं कर सकता। आपकी क्या रूचि है यह मेरे लिए बताना संभव नहीं। यदि वर्तमान राजनैतिक छीना झपटी में आप शामिल होना चाहते हैं तो यह मुद्दा बहुत उपयोगी है और यदि आप राज्य के खूनी पंजे से समाज को बचाने में रूचि रखते हैं तो आपकी सोच का पहला विषय लोक स्वराज्य की होना चाहिए। पत्रोत्तर के बाद आगे कुछ और समझने समझाने में सुविधा होगी।

(घ) श्री कृष्ण देव सिंह, मउ, उत्तरप्रदेश

ज्ञान तत्व एक सौ अठावन मे सर्वोदय के कुछ लोगों द्वारा शराब बेचकर कानून तोड़ने का सूझाव उपयुक्त नहीं लगा। यदि हमारी कथनी और करनी में अंतर होगा

तो उसका समाज पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा। हम एक तरफ तो शराब का विरोध करें और दूसरी ओर स्वयं शराब बेचें इसका कैसा संदेश जायेगा यह सोचिए।

उत्तर :— शराब बेचने का सुझाव न सर्वोदय का था न मेरा। चर्चा के क्रम में एक वरिष्ठ सर्वोदयी का एक सुझाव था जो मेरी नजर में वैसा गलत नहीं था। जैसा आप कह रहे हैं। जहां सरकार अपनी दुकान खोलकर शराब बेच रही है और शरपाब से टैक्स कमा रही है उसके बगल में दूसरे लोग तब तक शराब बेचें जब तक सरकारी दुकान बंद न हो जाए इस प्रक्रिया में मुझे तो कोई दोष नहीं दिखा। न हमारा उद्धेश्य शराब बेचने का है और न उसे प्रोत्साहित करने का। सूझाव मात्र इतना ही था कि इससे राज्य की आय प्रभावित होगी और एक प्रत्यक्ष टकराव पैदा होगा। सेवाग्राम सम्मेलन में इस सुझााव से भी अच्छा सुझाव आया तो इस सुझाव को छोड़कर उस दिशा में निर्णय हो गया है। अन्यथा यदि कोई अच्छा सुझाव नहीं आता और सब लोग शराब पर ही सहमत हो जाते तो मुझे कोई आपत्ति नहीं थी। जिन लोगों का शराब बेचने से जनेउ अपवित्र होता है वैसा सर्वोदयी तो मैं हूॅ नहीं। मैं तो ऐसा ही सर्वोदयी हूं जो आवश्यकता पड़ने पर अछूत से अछूत काम भी करने के लिए तैयार रहता हूॅ।

अब भारतीय संवैधानिक व्यवस्था का प्रतीक मानकर राष्ट्रपति राज्यपाल आदि के अपने वेतन वृद्धि के अधिकार को चुनौती देना तय हुआ है। पच्चीस और छब्बीस दिसम्बर को अधिक से अधिक संख्या में अम्बिकापुर आइये। इस योजना का प्रथम चरण यहां से शुरू हो रहा है। आशा है कि ज्ञानतत्व के पाठक इस कार्यक्रम की गंभीरता को समझेंगे। जो साथी सेवाग्राम न पहूंच पाए हों उनका तो इस संबंध में विशेष दायित्व है। आप अम्बिकापुर बनारस चौक में हमारा पता कर सकते है या फोन नं. 09617079344 या 07774—230344 से पता कर सकते है।